बच्चों का साहित्य और बाल-केन्द्रित अभ्यास

वर्तुल ढौंडियाल

'मैडम, क्या मैं भी वे कार्य कर सकती हूँ जो भईया और दीदी करते हैं?' दीक्षा ने पूछा। उसकी शिक्षिका ने सुखद आश्चर्य के साथ पूछा, 'कौन-से कार्य?' 'चमीक्षा', दीक्षा ने कहा। 'हाँ, हाँ, क्यों नहीं, ज़रूर कर सकती हो!' उसकी शिक्षिका ने बहुत ख़ुशी के साथ कहा। तब दीक्षा ने बहुत शर्माते हुए पूछा, 'तो मेरा वीडियो भी भेजा जाएगा?' बच्ची की प्यारी-सी बातें सुनकर शिक्षिका हँसी। उन्होंने उससे वादा किया कि यदि उसने किसी कहानी की समीक्षा की तो वे उसके वीडियो को शिक्षकों के समूह में साझा करेंगी।

दीक्षा, देहरादून ज़िले के विकासनगर ब्लॉक में डण्डा जंगल के प्राथमिक विद्यालय में कक्षा एक की छात्रा है। वह जौनसारी जनजाति की है और उसके पिता एक दिहाड़ी मज़दूर हैं। इस सरकारी स्कूल के अधिकांश विद्यार्थी साधारण सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के हैं और पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी हैं, जिनके घर में पढ़ाई में उनकी मदद करने वाला कोई नहीं है। इसलिए स्कूल में इन बच्चों की शिक्षा और उपलब्धियों का एकमात्र श्रेय उनके शिक्षकों को दिया जा सकता है।

शिक्षकों की भूमिका

सरकारी स्कूल के शिक्षकों के साथ काम करते हुए मैंने देखा कि *ऐसे शिक्षक भी हैं जो यह मानते हैं कि सभी विद्यार्थी सीख सकते हैं।* यह शिक्षक अपने शिक्षण में प्रगतिशील तरीक़ों का प्रयोग करते हैं और पढ़ाई में अपने विद्यार्थियों की रुचि बनाए रखने के लिए नए-नए तरीक़े आज़माते हैं। वे कक्षा की गतिविधियों या आकलन के साधनों को डिज़ाइन करते समय अपने विद्यार्थियों की विभिन्न आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखते हैं। दुर्भाग्य से ऐसे शिक्षकों की संख्या सीमित है।

दूसरी ओर ऐसे शिक्षक हैं जो इस बात पर पूरा विश्वास करते हैं कि केवल कुछ विद्यार्थी ही अच्छी तरह से सीख सकते हैं। उनकी इस धारणा के पीछे अक्सर उनके शिक्षण सम्बन्धी व्यक्तिगत अनुभव होते हैं। ऐसे शिक्षकों के पढ़ाने के तरीक़ों को देखने से पता चलता है कि वे विभिन्न विषयों को पढ़ाने के लिए पारम्परिक तरीक़ों का प्रयोग करते हैं। वे केवल पाठ्यपुस्तक का अनुसरण करते हैं और हालाँकि हर विद्यार्थी के अधिगम की ज़रूरतें अलग होती हैं, लेकिन इसके बावजूद भी वे कक्षा में एक ही सामान्य रीति से पढ़ाते जाते हैं।

नीरस शिक्षण

ऐसी कक्षाओं में इस तथ्य की पूरी तरह से अवहेलना की जाती है कि हर व्यक्ति के सीखने की शैली अलग-अलग होती है। जो विद्यार्थी इस तरह के पारम्परिक तरीक़ों के माध्यम से सीखने में सक्षम हैं, वे मुख्य रूप से ऐसे विद्यार्थी हैं जिनके पास पहले से ही किसी प्रकार की सामाजिक और शैक्षिक पूँजी होती है; कम-से-कम उनके अपने परिवार में कोई-न-कोई तो शिक्षित होता है और उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति बेहतर होती है। अक्सर यह विद्यार्थी पहले से ही एक ऐसी भाषा में बातचीत करते हैं, जिसे 'सभ्य' (शहरी) माना जाता है और वे ऐसे सामाजिक शिष्टाचार का पालन करते हैं जिसे शिक्षकों द्वारा 'उपयुक्त' माना जाता है।

पारम्परिक दृष्टिकोण में तथ्यों और विषय-सामग्री को याद करने पर ज़ोर दिया जाता है, लेकिन उसे समझने और आत्म-सात करने पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। इस तरह के दृष्टिकोण के आधार पर किया गया आकलन केवल उस विषय-सामग्री का परीक्षण करता है जिसे विद्यार्थियों ने याद किया है। जवाब या समस्या-समाधान के इन तरीक़ों में व्यक्तिगत सोच, रचनात्मकता और नवीनता या नई चीज़ों को आज़माने का मौका ही नहीं दिया जाता। यह पूरा दृष्टिकोण अत्यन्त पाठ्यपुस्तक उन्मुख और शिक्षक-केन्द्रित-सा प्रतीत होता है, जिसमें विद्यार्थी को अक्सर एक ऐसा निष्क्रिय शिक्षार्थी माना जाता है, जिसे ज्ञान प्राप्त करना है और जब पूछा या आकलन किया जाए तो उसे उस ज्ञान को पुन: पेश कर देना है। यह एक उबाऊ, थकाऊ और निरर्थक पद्धति है जिसमें सभी बच्चे रुचि नहीं ले सकते। कई बच्चों को कक्षा का वातावरण अजनबी-सा लगता है, जिसमें दुनिया के बारे में उनके पूर्व-ज्ञान, उनकी भाषा, उनके सन्दर्भ आदि की कोई प्रासंगिकता नहीं होती और उन्हें अपेक्षित अनुशासन, अभिव्यक्ति और याद रखने तरीक़े सीखने होते हैं। अब चूँकि अधिकांश विद्यार्थी इन विधियों को लेकर सहज नहीं हो पाते, इसलिए उन पर जल्द ही बुद्धू होने का ठप्पा लगा दिया जाता है और उन्हें पिछड़ा हुआ, यहाँ तक कि धीमी गति से सीखने वाले शिक्षार्थियों के रूप में देखा जाने लगता है। इस वजह से शिक्षा से उनकी दूरी और बढ़ने लगती है और वे स्कूल और शिक्षा प्रणाली को छोड़ने तक को तैयार हो जाते हैं।

हर बच्चे को वैयक्तिक रूप से पढ़ाना

दूसरी ओर, जो शिक्षक यह मानते हैं कि अपनी-अपनी क्षमता के स्तरों में अन्तर के बावजूद सभी विद्यार्थी सीख सकते हैं, वे अपने विद्यार्थियों की व्यक्तिगत प्रतिभा, पसन्द और नापसन्द, सीखने की शैली, चुनौतियों, सामाजिक-आर्थिक सन्दर्भों और सीखने की ज़रूरतों को समझने पर बहुत ध्यान देते हैं। इन शिक्षकों का अपने विद्यार्थियों के साथ एक अच्छा और दोस्ताना सम्बन्ध होता है और वे हर विद्यार्थी के विभिन्न विचारों और मतों पर खुले दिमाग़ से ध्यान देते हैं। इन शिक्षकों के लिए सीखने का अर्थ अवधारणाओं और विषय-सामग्री को याद रखने तक सीमित नहीं है; वे कक्षा के लिए अपेक्षित अधिगम के इष्टतम उद्देश्यों से अवगत होते हैं और पाठ्यपुस्तक की विषय-सामग्री के बजाय विद्यार्थियों की दक्षताओं पर जोर देते हैं।

यह शिक्षक आमतौर पर हर विद्यार्थी या विद्यार्थियों के समूहों के लिए अलग-अलग अनुदेशनों, विभिन्न उदाहरणों या गतिविधियों का उपयोग करते हैं। वे पूरी कक्षा को एक ही तरीक़े से नहीं पढ़ाते। वे यह भी जानते हैं कि एक बार किए हुए योगात्मक आकलन (Summative assessment) से उन सभी दक्षताओं के बारे में ज़्यादा पता नहीं चलता जो विद्यार्थी एक शैक्षिक वर्ष में हासिल करते हैं। इसके विपरीत, वे आकलन को शिक्षक के लिए एक ऐसे अधिगम के रूप में देखते हैं[1] जिसमें विद्यार्थियों में अधिगम की कमी की पहचान करने पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है और इस प्रकार का आकलन भविष्य के शिक्षण की योजना बनाने में मदद करता है। साथ ही विद्यार्थियों को इससे स्व-आकलन करने में सहायता मिलती है और वे यह समझ पाते हैं कि उन्हें और क्या सीखने की ज़रूरत है। इस तरह का आकलन एक प्रकार का रचनात्मक आकलन (formative assessment) है जिसमें विद्यार्थियों की शक्तियों और सीखने की ज़रूरतों की पहचान करने की गुंजाइश सन्निहित है।

2018-19 में *पोटली* पुस्तकालय कार्यक्रम के दौरान देहरादून के विकासनगर ब्लॉक के सरकारी स्कूलों में ऐसे कई तरीक़े देखने में आए। इस कार्यक्रम में अट्ठाईस स्कूलों के शिक्षकों ने स्वेच्छा से भाग लिया। ऐसी कई घटनाओं के विवरण मिलते हैं जिनमें इस बात के पर्याप्त सबूत हैं कि कार्यक्रम के दौरान विद्यार्थियों के सीखने के स्तर में सुधार हुआ। उन विद्यार्थियों में तो यह परिवर्तन सर्वाधिक स्पष्ट रूप से नज़र आया जो पढ़ या लिख नहीं सकते थे- वे भी पुस्तकों में रुचि लेने लगे। हालाँकि शुरू में वे केवल चित्रों को देखकर आनन्द लेते थे, लेकिन बाद में यह बात सामने आई कि इन बच्चों ने पढ़ना-लिखना सीखने में रुचि दिखाई और इन दक्षताओं को प्राप्त किया।

यह कार्यक्रम इस धारणा पर आधारित था कि यदि स्कूल में बच्चों को पर्याप्त और अच्छा साहित्य उपलब्ध हो और अध्यापकों को बाल-केन्द्रित तरीक़ों के बारे में बताकर उन्हें सहयोग प्रदान किया जाए तो इससे विद्यार्थियों के सीखने के स्तर में वांछित बदलाव लाया जा सकता है। कार्यक्रम में विभेदित अनुदेश[2] को बढ़ावा देने पर ध्यान केन्द्रित किया गया ताकि कक्षा के भीतर सभी विद्यार्थी प्रभावी ढंग से सीख सकें, भले ही उनकी सीखने की क्षमताओं में कितनी भी विविधता क्यों न हो। कार्यक्रम का डिज़ाइन ऐसा था कि इसने शिक्षकों को अपने तरीक़ों की जाँच-पड़ताल करने और उन पर चिन्तन करने का अवसर प्रदान किया।

परिणामों का विश्लेषण

बैठकों के दौरान रिकॉर्ड किए गए, शिक्षकों के चिन्तन-मनन, शिक्षण के विवरणों और उनके विचारों का विश्लेषण किया गया तो स्पष्ट समझ बन सकी कि हमें भाषा-शिक्षण के कार्यक्रमों में किन बातों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

कार्यक्रमों के दौरान उभरे कुछ बुनियादी सिद्धान्तों से जो अन्तर्दृष्टि मिली, उनसे सभी बच्चों को अपनी गति से और अपने तरीक़े से सीखने में मदद मिल सकती है। इन सिद्धान्तों को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

1. कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए जो शिक्षकों को इस बारे में मार्गदर्शन दे सकें कि क्या सिखाना है और क्यों सिखाना है। शिक्षकों को, शिक्षण के ऐसे तरीक़ों को विकसित करने के लिए समर्थन और मार्गदर्शन प्रदान किया जाना चाहिए जो उनके विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सबसे अच्छे हों।

2. यह बात बहुत स्पष्ट रूप से सामने आई कि हर बच्चा सीख सकता है, लेकिन एक सामान्य प्रकार का शिक्षण सभी विद्यार्थियों के अधिगम की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा नहीं करेगा, और न ही यह एक ही कक्षा के विद्यार्थियों की विभिन्न अधिगम-शैलियों और प्रक्रियाओं के अनुरूप होगा।

3. विभेदित अनुदेश की पद्धति ग्रामीण सरकारी स्कूलों की वर्तमान शिक्षण परिस्थितियों- बहु-ग्रेड, बहु-स्तरीय शिक्षण के लिए सबसे उपयुक्त है।

4. ग्रेडेड अथवा विभिन्न कक्षानुसार पर्याप्त पठन सामग्री उपलब्ध हो तो उससे पढ़ने और लिखने में बच्चों की रुचि विकसित करने में मदद मिलती है। इस सामग्री में विभिन्न शैलियों के पाठ शामिल होने चाहिए जैसे कि कहानी,

कविता, नाटक आदि। लेकिन इस रुचि के साथ में शिक्षक को चाहिए कि वे बच्चों को व्यक्तिगत रूप से अनुदेश और समर्थन भी दें क्योंकि केवल रुचि होने से कोई विद्यार्थी पढ़ना और लिखना सीखने में सक्षम नहीं हो सकता

5. शिक्षक नए दृष्टिकोण और तरीक़ों को सीखने के लिए तैयार हैं, लेकिन सैद्धान्तिक व्याख्यान उन चुनौतियों और स्थितियों से निपटने में ख़ास मदद नहीं कर सकते जो कक्षा में शिक्षण के दौरान दिन-प्रतिदिन सामने आते हैं। इसलिए यह ज़रूरी है कि रिसोर्स पर्सन कक्षाओं में जाकर समय बिताएँ ताकि वे वास्तविक कक्षा की स्थितियों के लिए विशिष्ट रूप से निर्मित समाधान सुझाने में शिक्षक की मदद कर सकें।

प्राथमिक शाला डण्डा जंगल में संक्षिप्त बातचीत के एक महीने बाद, दीक्षा की शिक्षिका ने शिक्षक-समूह में एक वीडियो साझा किया। मुझे यह देखकर बहुत ख़ुशी हुई कि दीक्षा ने अपनी पाठ्यपुस्तक की एक कहानी की समीक्षा की थी। उसने कहानी तथा उसके पात्रों पर चर्चा की और बताया कि उसे कहानी में क्या अच्छा लगा और क्या नहीं। उसने यह भी कहा कि कहानी के प्रमुख पात्र के उलट, वह अपने दोस्तों को दुख नहीं पहुँचाएगी। हालाँकि यह उस तरह की समीक्षा नहीं थी जो हमें सामान्यतया पढ़ने को मिलती है, लेकिन यह एक विद्यार्थी के चिन्तन को दर्शाती है, जिसने कहानी के बारे में सोचा और अपनी राय (बाहरी दबावों से प्रभावित हुए बिना व्यक्त किए गए मौलिक विचार) को व्यक्त किया।

ऐसे उदाहरण और अनुभव, शिक्षकों और प्रशिक्षकों के इस विश्वास को बढ़ावा देते हैं कि हर बच्चा सीख सकता है, ज़रूरत केवल इस बात की है कि शिक्षक प्रत्येक बच्चे को एक विशिष्ट व्यक्ति माने और उसे ऐसा व्यक्तिगत सहयोग/समर्थन प्रदान करे जो उस शिक्षार्थी की आवश्यकता के अनुरूप हो।

References

1 *The Learning, Teaching and Assessment Guide*, Chapter 3, http://www.ltag.education.tas.gov.au

2 *The Differentiated Classroom*: Carol Ann Tomlinson



वर्तुल ढौंडियाल देहरादून के अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन में हिन्दी भाषा के स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं। उन्होंने पत्रकारिता और जनसंचार में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की है। उन्होंने 'प्रथम' और 'रूम-टू-रीड' जैसे संगठनों में भी कार्य किया है। उन्होंने हिस्ट्री चैनल के लिए कंटेंट एडिटर के रूप में कार्य किया है। वे दर्शन और शोध में रुचि रखते हैं। उनसे vartul.dhaundiyal@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद : नलिनी रावल